

व्यावहारिक परिदृश्य में श्रीमद्भगवद्गीता की उपादेयता

डॉ. मृगांक मलासी

सहायक आचार्य (संस्कृत)

डॉ. शिवानन्द नौटियाल

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग (चमोली) उत्तराखण्ड

आधुनिक युग को विज्ञान, तकनीकी और भौतिक प्रगति का युग कहा जाता है, किंतु इसके साथ ही यह मानसिक तनाव, अवसाद, प्रतिस्पर्धा और नैतिक मूल्यों के क्षरण का युग भी बन गया है। मनुष्य के पास साधन तो बढ़े हैं, परंतु शांति और संतोष का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसे समय में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या प्राचीन भारतीय ग्रंथ, विशेषतः श्रीमद्भगवद्गीता, आज के जीवन में कोई व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत कर सकती है? श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक ऐसा ग्रंथ है जो केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग ही नहीं, अपितु मानव जीवन के व्यावहारिक पक्षों का भी गहन समाधान प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में मनुष्य तनाव, अनिश्चितता, नैतिक द्वंद्व, कर्तव्यबोध एवं उद्देश्यहीनता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो केवल आध्यात्मिक मुक्ति तक सीमित न होकर मानव जीवन के व्यावहारिक पक्षों को भी गहराई से स्पर्श करता है। गीता के उपदेश आज के प्रतिस्पर्धात्मक, तनावपूर्ण और मूल्य-संकट से ग्रस्त समाज में किस प्रकार संतुलित, नैतिक और सार्थक जीवन जीने की दिशा प्रदान करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेक भाष्य लिखे गए हैं। यह ऐसा कालजयी ग्रन्थ है जो प्रस्थानत्रयी में सम्मिलित है। आचार्य शंकर, रामानुज, माधव, बल्लभ, निम्बार्क आदि ने गीता पर भाष्य लिखे हैं। एतदतिरिक्त आनन्दगिरी, संत ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रमण के साथ बाल गंगाधर तिलक, श्रीअरविन्द, डॉ. राधाकृष्णन्, विनोबा भावे, सातवलकर आदि विचारकों ने गीता की गम्भीर विवेचना की है। श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश युद्धभूमि में दिया गया, जहाँ अर्जुन मानसिक संकट, कर्तव्य-बोध और मोह के द्वंद्व से ग्रस्त था। यह स्थिति आज के परिवेश से भिन्न नहीं है। अर्जुन का यह विषाद केवल व्यक्तिगत करुणा नहीं है, अपितु सामाजिक और नैतिक चिंता से भी जुड़ा हुआ है। आज का व्यक्ति भी अपने पारिवारिक, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन में अर्जुन जैसी दुविधाओं से गुजरता है। गीता का कर्मयोग यह सिखाता है कि मनुष्य को फल की चिंता किए बिना अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए यह सिद्धांत आधुनिक कार्य-संस्कृति और प्रबंधन (management) में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।



गीता में श्रीकृष्ण द्वारा प्रतिपादित समत्वबुद्धि का सिद्धांत आज के तनावग्रस्त जीवन में मानसिक संतुलन बनाए रखने का एक प्रभावी साधन है। “सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय में समान रहने” का उपदेश व्यक्ति को आंतरिक स्थिरता प्रदान करता है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के emotional stability के सिद्धांत से भी मेल खाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन का विषाद केवल व्यक्तिगत मानसिक संकट नहीं है, अपितु वह सामाजिक और नैतिक विघटन की आशंका से भी जुड़ा हुआ है। युद्धभूमि में खड़े होकर अर्जुन अपने ही स्वजनों, गुरुओं और संबंधियों को देखकर शस्त्र त्याग देना चाहता है। अर्जुन स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि कुल के नाश से कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और धर्म के नष्ट होने पर संपूर्ण कुल अधर्म से आक्रांत हो जाता है –

‘कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।

धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥¹

इस श्लोक में अर्जुन समाज की उस स्थिति की ओर संकेत करता है जहाँ पारिवारिक और सामाजिक संरचनाओं के टूटने से अधर्म की वृद्धि होती है। आज के संदर्भ में यह विचार अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। आधुनिक समाज में परिवार संस्था का कमजोर होना, नैतिक अनुशासन का ह्रास और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीनता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। गीता का यह कथन आज के सामाजिक जीवन में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है, जहाँ पारिवारिक मूल्यों, नैतिक अनुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का क्षरण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। “कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः” यह श्लोक सामाजिक संरचना के विघटन की चेतावनी देता है। आज परिवार-व्यवस्था, नैतिक मूल्यों और सामाजिक उत्तरदायित्व में जो गिरावट दिखाई देती है, वह गीता के इस कथन को और अधिक सार्थक बनाती है। अर्जुन का युद्ध से विमुख होना केवल व्यक्तिगत करुणा नहीं, अपितु सामाजिक धर्म के नष्ट होने की आशंका का परिणाम है। आज की परिस्थिति में ऐसा नहीं है कि सज्जन पुरुषों का अभाव है अपितु अर्जुन की ही भाँति वे लोग विषाद में आकर अधर्म का प्रतिकार नहीं करना चाहते। यह कथन नैतिकता को सत्ता और भोग से ऊपर स्थापित करता है, जो आज की उपयोगितावादी संस्कृति में अत्यंत प्रासंगिक है।

आधुनिक समाज में बढ़ती व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ कर्तव्यबोध का ह्रास गीता की इस चेतावनी को और अधिक अर्थपूर्ण बनाता है। अर्जुन का यह कथन कि वह अपने गुरुओं और पूज्यजनों को मारकर राज्यसुख भोगने की अपेक्षा भिक्षा से जीवन यापन करना अधिक श्रेयस्कर समझता है –

गुरुनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।²

¹ श्रीमद्भगवद्गीता, 1.40

² श्रीमद्भगवद्गीता, 2.5



यह दर्शाता है कि गीता का नैतिक चिंतन केवल विजय या पराजय तक सीमित नहीं है, अपितु मूल्यबोध को सर्वोपरि मानता है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित न रखकर उसे नैतिक और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करना है।³ यही दृष्टि गीता के संपूर्ण दर्शन में परिलक्षित होती है।

गीता का कर्मयोग आधुनिक जीवन के लिए उसका सबसे व्यावहारिक योगदान माना जा सकता है। श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं —

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यकर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चक्रियः।⁴

प्रस्तुत वाक्य इस भांति का निराकरण करता है कि संन्यास का अर्थ कर्मत्याग है। वास्तव में गीता कर्म करते हुए भी आंतरिक वैराग्य और निष्कामता का उपदेश देती है। आज के व्यावसायिक जीवन में जहाँ व्यक्ति निरंतर परिणाम, प्रमोशन और प्रतिस्पर्धा के दबाव में रहता है, वहाँ कर्मयोग का यह सिद्धांत मानसिक तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध होता है।

‘कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन’⁵ का सिद्धांत आधुनिक कार्य-संस्कृति में process-oriented approach के समान है, जहाँ कर्म की गुणवत्ता को फल से अधिक महत्व दिया जाता है। आज के समय में जब व्यक्ति सामाजिक दबाव या तुलना के कारण अपने वास्तविक कर्तव्य से विचलित हो जाता है, यह उपदेश उसे आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाता है। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि इस श्लोक से सामान्य रूप से हर भारतीय परिचित है। जिसने कभी गीता का अध्ययन नहीं किया वह भी इस श्लोक को सामान्य व्यवहार में सुनता आया है। कतिपय लोग इसका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं कि कर्म करते जाओ फल की चिन्ता मत करो। परन्तु यह अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। वस्तुतः यह बताता है कि हमारा अधिकार मात्र कर्म करने में है, फल पर हमारा अधिकार नहीं है। यथा – कोई विद्यार्थी अच्छे अंक से उत्तीर्ण होना चाहता है तो इसके लिए उसे अध्ययन करना होगा। यह अध्ययन रूपी कर्म उसके अधीन है कि वह कितना समय अध्ययन करता है। तत्पश्चात् परीक्षा देने तक उसका अधिकार है, परन्तु परीक्षा परिणाम को वह अपने अधिकार में नहीं रख सकता कि वह सौ में से सौ अंक

³ भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1 डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

⁴ श्रीमद्भगवद्गीता, 6.1

⁵ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 2, श्लोक 47



स्वयं को दे सके। उसने जितना अध्ययन किया जो भी परीक्षा में लिखा तत्पश्चात् उसी के अनुसार उसे अंकों की प्राप्ति होगी। यही हमारे जीवन में भी है कि हम कर्म पर ही ध्यान केन्द्रित करें।

आधुनिक युग को तनाव का युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कार्य-दबाव, भविष्य की अनिश्चितता और असफलता का भय व्यक्ति को मानसिक रूप से कमजोर बना देता है। गीता जीवन और मृत्यु के प्रश्न को भी अत्यंत व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। आज व्यक्ति भौतिकता की अंधी दौड़ में स्वयं को अमर समझने लगा है। वह भूल जाता है कि उसे अपना भौतिक शरीर त्यागना ही पड़ेगा। स्वयं श्रीकृष्ण को भी अपना शरीर त्यागना पड़ा। क्योंकि जो भी उत्पन्न हुआ है उसका नाश निश्चित है। गीता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।⁶

ये श्लोक आधुनिक मनुष्य को मृत्यु-भय और असुरक्षा से मुक्त करने का मार्ग दिखाते हैं। आज के अनिश्चित और तनावपूर्ण जीवन में यह दृष्टि व्यक्ति को मानसिक स्थिरता प्रदान करती है। यदि व्यक्ति यह सदैव स्मरण रखे तो वह अनैतिक कार्यों की ओर प्रवृत्त नहीं होगा और न ही किसी को कष्ट देगा। उसे इस सत्यता को आत्मसात् करना होगा कि शरीर नश्वर है केवल आत्मा ही है जो अजर एवं अमर है।⁷ यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान में existential anxiety को कम करने में सहायक सिद्ध होता है। यह बोध कराता है कि परिवर्तन और नश्वरता जीवन का अनिवार्य सत्य हैं। जब मनुष्य इस सत्य को स्वीकार कर लेता है, तब उसके भीतर मृत्यु-भय और भविष्य की चिंता कम होने लगती है। आधुनिक मनोविज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि अनिश्चितता को स्वीकार करना मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

गीता के उपदेशकर्ता श्रीकृष्ण आदर्श नेतृत्व का प्रतीक है। वह अर्जुन को आदेश नहीं देते, अपितु उसका विवेक जगाते हैं। यह संकेत करता है कि जब समाज में नैतिक पतन हो, तब नेतृत्व का कर्तव्य है कि वह धर्म की पुनर्स्थापना करे। जब-जब समाज में धर्म का क्षरण और अधर्म में वृद्धि होती है, तब गीता पुनर्स्थापन का सिद्धांत प्रस्तुत करती है।⁸ यह श्लोक अवतारवाद मात्र तक सीमित नहीं है, अपितु यह संकेत करता है कि प्रत्येक युग में व्यक्ति को अपने स्तर पर धर्म की पुनर्स्थापना करनी चाहिए। धर्म से अभिप्राय है जिसे धारण किया जाए। 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्' यही व्यक्ति का आचरण होना चाहिए। प्रत्येक युग में व्यक्ति को अपने स्तर पर धर्म और नैतिकता की रक्षा करनी चाहिए। आज के सामाजिक जीवन में, जहाँ भ्रष्टाचार, स्वार्थ और

⁶ श्रीमद्भगवद्गीता 2.27

⁷ न जायते म्रियते वा कदाचित् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.20

⁸ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ श्रीमद्भगवद्गीता 4.7



नैतिक पतन व्यापक रूप से दिखाई देता है, गीता का यह उपदेश अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है। आधुनिक जीवन की जटिलताएँ अर्जुन के विषाद से भिन्न नहीं हैं। गीता का उपदेश इसी द्वंद्व का समाधान प्रस्तुत करता है, जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार भारतीय दर्शन का लक्ष्य जीवन को नैतिक ऊँचाई प्रदान करना है, न कि केवल भौतिक समृद्धि।

गीता का कर्मयोग जीवन से पलायन नहीं, अपितु जीवन में रहकर संतुलन सिखाता है। आज का मनुष्य परिणाम-केन्द्रित (result-oriented) जीवन जीता है, जिससे तनाव और असंतोष उत्पन्न होता है। गीता के अनुसार उत्तम प्रकार से आचरित परधर्म की अपेक्षाकृत स्वधर्म गुणहीन भी उत्कृष्ट है। स्वयं के धर्म में मृत्यु भी श्रेयस्कर है परन्तु परधर्म भयानक है।⁹ व्यावहारिक धरातल पर हम इस कथन की विवेचना करें तो हम देखते हैं कि एक-दूसरे से आगे जाने की प्रतिस्पर्धा में हर कोई भाग रहा है। माता-पिता अपनी अपेक्षाओं का भार अपनी संतति पर डाल देते हैं। आपसी सम्बन्धों को देखते हुए अपने बच्चों को भी दूसरे की तरह बनाने के लिए उस पर इतना बोझ डाल दिया जाता है कि उसकी नैसर्गिक प्रतिभा का हनन हो जाता है। वस्तुस्थिति यह है कि नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) की रिपोर्टों के अनुसार, भारत में हर साल लगभग **13,000 से अधिक छात्र** (2022 में 13,044) आत्महत्या कर रहे हैं, जो प्रति घंटे एक से अधिक छात्र की मृत्यु के बराबर है। यह आंकड़ा हम सबके लिए चिन्ताजनक है। छात्रों का जीवन से यह पलायन केवल और केवल अपेक्षाओं पर खरा न उतर पाने के कारण है। आधुनिक जीवन में तुलना और प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न असंतोष का समाधान हमें गीता में प्राप्त होता है। स्वधर्म ही उचित है और स्वधर्म का अर्थ है कि बच्चा या विद्यार्थी अथवा कोई भी व्यक्ति अपनी अभिरुचि अनुसार ही कार्य करे। दूसरों के अंधानुकरण में अपना जीवन नष्ट न करे।

आधुनिक प्रबंधन (management) में गीता का कर्मयोग, निष्पक्षता और समत्वबुद्धि ethical leadership के सिद्धांतों से मेल खाती है। गीता ज्ञान को मुक्ति और शुद्धि का साधन मानती है। कृष्ण कहते हैं कि इस भूलोक में तत्त्वज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह अन्य कोई साधन उपलब्ध नहीं है। उस तत्त्वज्ञान को दीर्घकाल पर्यन्त कर्मयोग अनुष्ठान करके शुद्धान्तःकरण हुआ कर्मयोगी स्वयमेव अपनी आत्मा में अवश्य अनुभव करता है।¹⁰ ज्ञान केवल सूचना (information) नहीं, अपितु आत्मबोध (self-realization) का साधन है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रायः कौशल और रोजगार पर केंद्रित हो गई है, किंतु नैतिक और आत्मिक विकास की उपेक्षा की जा रही है। गीता का ज्ञान-सिद्धांत इस असंतुलन को दूर करने का मार्ग प्रस्तुत करता है। “ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं

⁹ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

स्वधर्मं निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3.35

¹⁰ न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति। श्रीमद्भगवद्गीता 3.38



सन्तरिष्यसि¹¹ का विचार आधुनिक शिक्षा-दर्शन और आत्म-विकास (self-development) की अवधारणा से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह श्लोक यह दर्शाता है कि ज्ञान व्यक्ति के भीतर नैतिक परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। आधुनिक सुधारवादी और आत्म-विकास के सिद्धांत इस विचार से गहराई से जुड़े हुए हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दर्शन की एक केंद्रीय कड़ी है, जिसमें उपनिषद्, सांख्य और योग दर्शन का समन्वय दिखाई देता है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य मानव जीवन को नैतिक और आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करना है, न कि केवल भौतिक समृद्धि।¹² गीता इसी दार्शनिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है। गीता में जीवन को न तो पूर्णतः त्याज्य माना गया है और न ही केवल भोग का साधन। यह मध्य मार्ग का दर्शन प्रस्तुत करती है, जिसमें कर्म करते हुए भी आत्मिक शांति प्राप्त की जा सकती है। इस दृष्टि से गीता भारतीय दर्शन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

गीता का एक केंद्रीय सिद्धांत समत्वबुद्धि है। श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि जीवन में सुख-दुःख, लाभ-हानि और सफलता-असफलता को समान भाव से स्वीकार करना चाहिए।¹³ आज का मनुष्य अत्यधिक भावनात्मक उतार-चढ़ाव का शिकार है। कभी अत्यधिक प्रसन्नता और कभी गहन निराशा। ये दोनों ही स्थितियाँ मानसिक असंतुलन उत्पन्न करती हैं। गीता का समत्व-सिद्धांत भावनात्मक परिपक्वता (emotional maturity) की ओर ले जाता है। कार्यस्थलों पर होने वाला तनाव, असफलता का भय और सामाजिक तुलना—इन सभी समस्याओं का समाधान गीता के समत्वबुद्धि के सिद्धांत में निहित है। यह सिद्धांत आधुनिक stress management techniques से गहराई से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है।

कर्म, कर्तव्य और आधुनिक व्यावसायिक जीवन - आधुनिक व्यावसायिक जीवन (professional life) में व्यक्ति प्रायः नैतिक द्वंद्व से गुजरता है। लाभ, पद और प्रतिस्पर्धा के दबाव में वह कई बार अपने मूल्यों से समझौता कर लेता है। गीता इस संदर्भ में कर्तव्य की सर्वोच्चता पर बल देती है। गीता के अनुसार अपने कार्यों को सम्पादित करो। कार्य में सफलता मिले या न मिले बस हमें पूर्ण मनोयोग से कार्य करना चाहिए।¹⁴ श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्तव्य के परिणामों से भयभीत न होने की शिक्षा देते हैं। आज के संदर्भ में यह विचार व्यक्ति को नैतिक साहस (moral courage) प्रदान करता है। कर्मयोग का सिद्धांत यह सिखाता है कि व्यक्ति को अपने कार्य के प्रति पूर्ण निष्ठा

¹¹ श्रीमद्भगवद्गीता 4.36

¹² भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1 डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

¹³ सुख दुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धान्य युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.38

¹⁴ हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धान्य कृतनिश्चयः॥ श्रीमद्भगवद्गीता 2.37



रखनी चाहिए, परंतु उसके फल से आसक्ति नहीं करनी चाहिए। यह दृष्टि आधुनिक प्रबंधन (management studies) में duty-oriented leadership की अवधारणा से मेल खाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित नेतृत्व का स्वरूप आधुनिक authoritative leadership से भिन्न है। गीता का नेतृत्व आदेशात्मक नहीं, अपितु विवेक-जागरण पर आधारित है। श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए बाध्य नहीं करते, अपितु उसके भीतर छिपे कर्तव्यबोध और विवेक को जाग्रत करते हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक participative एवं ethical leadership के सिद्धांतों से गहराई से जुड़ा हुआ है। गीता में नेतृत्व का मूल आधार कर्तव्य, नैतिकता और लोककल्याण है। अर्जुन को यह बोध कराया जाता है कि उसका युद्ध व्यक्तिगत शत्रुता नहीं, अपितु सामाजिक धर्म की रक्षा के लिए है। आधुनिक संदर्भ में नेतृत्व का यही आदर्श राजनीति, प्रशासन और कॉर्पोरेट जगत में अपेक्षित है, जहाँ निर्णय केवल लाभ के लिए नहीं, अपितु व्यापक सामाजिक प्रभाव को ध्यान में रखकर किए जाने चाहिए।

आधुनिक प्रबंधन सिद्धांतों में लक्ष्य-निर्धारण, कार्य-कुशलता और परिणाम को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। किंतु इसके दुष्परिणामस्वरूप तनाव, असंतोष और नैतिक विचलन उत्पन्न होते हैं। गीता का कर्मयोग इन समस्याओं का संतुलित समाधान प्रस्तुत करता है। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार गीता कर्म और ज्ञान का ऐसा समन्वय प्रस्तुत करती है, जो व्यक्ति को कर्मशील रहते हुए भी आंतरिक शांति प्रदान करता है।

यद्यपि गीता में कर्म और ज्ञान पर विशेष बल दिया गया है, तथापि भक्ति को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भक्ति यहाँ अंधविश्वास नहीं, अपितु आस्था और समर्पण का भाव है, जो व्यक्ति को मानसिक दृढ़ता प्रदान करता है। आधुनिक जीवन में जब व्यक्ति अकेलापन, निराशा और अर्थहीनता का अनुभव करता है, तब गीता की भक्ति-दृष्टि उसे भावनात्मक सहारा प्रदान करती है। यह आस्था व्यक्ति को आंतरिक संतुलन और आत्मविश्वास प्रदान करती है, जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता का सम्पूर्ण द्वादश अध्याय इसी भावना को प्रदर्शित करता है।

गीता व्यक्ति को केवल अपने लिए नहीं, अपितु समाज के लिए भी कर्म करने की प्रेरणा देती है। निष्काम कर्म का सिद्धांत सामाजिक सेवा और लोककल्याण का आधार बनता है। जब व्यक्ति अपने कार्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर करता है, तब समाज में संतुलन और सामंजस्य स्थापित होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि'¹⁵ का उपदेश आधुनिक सामाजिक जीवन में अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ ने सामूहिक चेतना को कमजोर कर दिया है।

¹⁵ श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20



आधुनिक युग में आत्मविकास (self-development) पर अत्यधिक बल दिया जाता है। नई शिक्षा नीति में भी इस पर पर्याप्त जोर दिया गया है। कौशल विकास पाठ्यक्रमों पर अधिक बल दिया जा रहा है, परन्तु सत्यता यह है कि ये समस्त प्रकल्प बाह्य सफलता तक ही सीमित रह जाते हैं। इस दृष्टि से भी गीता सदैव प्रासंगिक है। गीता आत्म-विकास को आंतरिक शुद्धि और विवेक से जोड़ती है। 'उद्धरेदात्मनाऽत्मानं' का सिद्धांत व्यक्ति को आत्म-उत्तरदायित्व (self-responsibility) का बोध तो कराता ही है साथ में यह भी बताता है कि व्यक्ति अपना मित्र भी स्वयं है और शत्रु भी।¹⁶ यह विचार आधुनिक प्रेरणात्मक साहित्य (motivational literature) से भी गहराई से जुड़ा हुआ है।

व्यक्ति आज तनाव, अवसाद, प्रतिस्पर्धा, नैतिक असमंजस, पारिवारिक विघटन आदि जिन समस्याओं से ग्रस्त है उन सभी समस्याओं का समाधान गीता में प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध है। गीता बताती है कि तनाव का मूल कारण फल की आसक्ति है। असंतोष का कारण परधर्म और तुलना है। नैतिक पतन का कारण कर्तव्य से विमुखता है। कर्मयोग इन तीनों समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। जब व्यक्ति अपने कर्तव्य को ईश्वरार्पण भाव से करता है, तब उसका जीवन अधिक संतुलित, शांत और अर्थपूर्ण बनता है। आधुनिक मनोविज्ञान, प्रबंधन और नेतृत्व सिद्धांत जिस *emotional balance*, *ethical decision making* और *self-control* की बात करते हैं, उनका मूल बीज गीता में पूर्व से ही विद्यमान है।

समकालीन समाज में नैतिक मूल्यों का हास एक गंभीर समस्या बन चुका है। भ्रष्टाचार, स्वार्थ, हिंसा और असहिष्णुता सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रही हैं। गीता का धर्म-सिद्धांत किसी संकीर्ण धार्मिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है, अपितु वह कर्तव्य, न्याय और लोककल्याण पर आधारित है। "लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि"¹⁷ का उपदेश यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति का कर्तव्य केवल स्वयं तक सीमित नहीं है। आज जब समाज में व्यक्तिवाद हावी हो रहा है, तब गीता सामूहिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व की पुनर्स्थापना का मार्ग दिखाती है।

वस्तुतः श्रीमद्भगवद्गीता किसी एक काल, वर्ग या परिस्थिति तक सीमित ग्रंथ नहीं है। इसका दर्शन मानव जीवन की उन मूलभूत समस्याओं से जुड़ा है, जो प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में उपस्थित रहती हैं। अर्जुन का विषाद, कर्तव्य-द्वंद्व, नैतिक संकट और मानसिक अशांति आज के मानव की स्थिति से भिन्न नहीं है। गीता का समाधान भी इसी कारण कालातीत और सार्वकालिक बन जाता है। गीता जीवन से पलायन का नहीं, अपितु जीवन के भीतर संतुलन स्थापित करने का मार्ग दिखाती है। कर्मयोग, निष्काम कर्म, समत्वबुद्धि, स्वधर्म, ज्ञान और

¹⁶ उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ श्रीमद्भगवद्गीता, 6.5

¹⁷ श्रीमद्भगवद्गीता 3.20



भक्ति आदि सभी सिद्धांत मिलकर एक ऐसे व्यावहारिक जीवन-दर्शन का निर्माण करते हैं, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं का समाधान प्रस्तुत करता है। श्रीमद्भगवद्गीता आधुनिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का एक समग्र समाधान प्रस्तुत करती है। गीता का दर्शन मानव जीवन को संतुलित, नैतिक और उद्देश्यपूर्ण बनाने का मार्ग दिखाता है। कर्मयोग व्यक्ति को कर्मशील रहते हुए भी तनावमुक्त बनाता है। स्वधर्म का सिद्धांत आत्मसंतोष और आत्मसम्मान प्रदान करता है। समत्वबुद्धि भावनात्मक अस्थिरता को नियंत्रित करती है, जबकि ज्ञान और भक्ति आत्मिक शुद्धि एवं आंतरिक शक्ति का संचार करते हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के पश्चात् भी श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता अक्षुण्ण बनी हुई है। आज के युग में गीता को केवल पूजा-पाठ तक सीमित न रखकर, जीवन-दर्शन के रूप में अपनाने की आवश्यकता है। यही इसकी वास्तविक व्यावहारिकता है। गीता की व्यावहारिक उपादेयता कालातीत है।

